डॉ. अम्बेडकर का भारतीय सामाजिक न्याय दर्शन|

डॉ. संजय कुमार
प्रभारी, दीनदयाल उपाध्याय अध्ययन केंद्र
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय

भारतीय चिंतन परंपरा में वैदिक काल से ही सामाजिक और राजनीतिक दर्शन के स्त्रोत में 'न्याय की अप्रतिम परंपरा' दिखाई पड़ती है, जिसमें संपूर्ण मानवीय सामाजिक कल्याण को केंद्र में रखते हुए न्याय दर्शन के वैविध्यपूर्ण अर्थ को संप्रेषित किया गया है| भारतीय चिंतन धारा में न्याय की अवधारणा एकत्व पर आधारित है जिसके आलोक में वैदिक युग से ही धर्म और नैतिकता, कर्तव्य और अधिकार, परोपकार, पाप-पुण्य, सदाचार, पंच-महाव्रत, अष्टांगिक मार्ग, स्वधर्म, निष्काम-कर्म, ब्रह्म और आत्मा के स्वरूप जैसी सामाजिक और धार्मिक मूल्यों को परिलक्षित करने वाली विशिष्ट परंपरा का संस्कार दिखाई पड़ता है| भारतवर्ष में वैदिकयुगीन विविध मनीषियों यथा- याज्ञवल्क्य, मनु, कौटिल्य, वात्स्यायन इत्यादि ने सामाजिक और राजनीतिक दर्शन के आलोक में न्याय की अवधारणा को प्रख्यापित किया| जिसका परिलक्षण भारतीय चिंतन परंपरा और सनातनी संस्कृति के आलोक में परिणित हुआ, जो मानव मूल्यों और सामाजिक मूल्यों के सामरिक प्रबोधन का हिमायती है| यह परंपरा वैदिक युगीन प्राच्यवेद ऋग्वेद में उल्लिखित उक्त सूक्ति के मूल्यों को भी परिलक्षित करती है, **"संगच्छधवं संवद्धवं संवोमनांसि जानताम्|"**[i] जिसमें सामाजिक न्याय के उच्चादार्शों के स्वरूप साथ मिलकर रहने, साथ चलने, साथ बोलने व साथ-साथ विचार करने के भाव अभिव्यंजित हैं| प्राचीन भारतीय मनीषियों की वैशिष्ट्यपूर्ण सामाजिक व धार्मिक परम्परा का उद्बोधन यद्यपि आधुनिक भारतीय मनीषियों ने भी किया लेकिन आधुनिक चिंतकों ने राजनीतिक

पराधीनता और सामाजिक पिछड़ेपन के कारण सामाजिक संरचना और राजनीतिक स्वतंत्रता पर अत्यधिक बल देते हुए मानवाधिकार और सामाजिक न्याय का नारा बुलंद किया| आधुनिक भारत की चिंतन परंपरा में स्वामी विवेकानंद, राजा राम मोहन रॉय, महात्मा गांधी, ज्योतिबा फुले, भीमराव अंबेडकर, डॉ. हेडगेवार, पं. दीनदयाल उपाध्याय इत्यादि मानवाधिकार और सामाजिक न्याय के संरक्षक हुए| जिन्होंने समाज में निहित मानव मूल्यों और सामाजिक न्याय के आदर्शों को आधार बनाकर न केवल समाज में जन जागरण का कार्य किया अपितु राष्ट्रीय मूल्यों की पहचान कर साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध भी सामाजिक न्याय के धरातल और मानवाधिकार की भूमि पर एक सामंजस्य और समतामूलक समाज के निर्माण पथ का आह्वान किया|

सामाजिक न्याय एक समान हितों को परिलक्षित करने वाली आधुनिक शासन की एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अंतर्गत समाज की उपेक्षित, असुरक्षित एवं हाशिये पर स्थित लोगों यथा- व्यक्तियों, महिलाओं, समुदायों व संप्रदायों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने तथा उनके सामाजिक और मानवीय मूल्यों को सुरक्षा की गारंटी या निश्चिंतता प्रदान करने वाली व्यवस्था है| जिसका जुड़ाव भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त विविध उपबंधों यथा- 'विधि का शासन', 'विधि की समक्ष समता', 'न्यायपालिका की स्वतंत्रता' से है| इन्हीं विधिक उपबंधों के आलोक में भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक तथा धार्मिक और राजनीतिक मूल्यों को न्यायोचित आधार प्रदान किया गया है| भारतीय सामाजिक दर्शन जीवन और जगत का तात्विक अध्ययन प्रस्तुत करता है जिसमें सामाजिक सन्दर्भों के व्यापक अध्ययन के बिना सामाजिक न्याय की संकल्पना अधूरी और अपूर्ण प्रतीत होती है क्योंकि जिस प्रकार विशाल और अथाह समुद्र में कोई जहाज बिना लक्ष्य के

भटकता हुआ समुद्र में विलीन हो जाता है ठीक उसी प्रकार दर्शन बिना किसी लक्ष्य आदर्श के साध्य होने की गति दिशाहीन प्रतीत होती है| यही कारण है कि समाज रूपी तत्व न्याय दर्शन को एक नवीन आयाम प्रदान करता है| सामाजिक न्याय वस्तुतः समाज या राज्य के अंदर संपत्ति, परिसंपत्ति, विशेषाधिकार और लाभ हेतु किए गए वितरण का एक न्यायिक विनियोग है जिसका सामरिक परिणाम मानव कल्याण करना है| सामाजिक न्याय के अंतर्गत एक न्याय संगत और निष्पक्ष सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना होता है जिसमें समाज के प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय एवं संप्रदाय को न्याय प्रदान करने का उद्देश्य निहित होता है| सामाजिक न्याय की शब्दावली अत्यंत ही व्यापक है| इसका उद्देश्य सभी नागरिकों को सामाजिक, भौतिक और राजनीतिक संसाधनों का संगत वितरण प्रदान करना है| सामाजिक न्याय सामाजिक अन्याय का प्रतिफल है, यह सभी के लिए स्थिति और अवसर की समानता को सुनिश्चित करता है|

सामाजिक न्याय की अवधारणा का प्राचीनतम स्त्रोत चातुर्यवर्ण्य व्यवस्था के प्रारंभ तथा चार आश्रमों की व्यवस्था में परिलक्षित होती है, जो वैदिक युग से लेकर वर्तमान तक व्याप्त है| वैदिक युग से वर्ण व्यवस्था और आश्रम पद्धति को पवित्र एवं दिव्य संस्था के रूप में हिंदू ग्रंथों, आरण्यकों, धर्मशास्त्रों, स्मृति, उपनिषद और महाकाव्यों में प्रामाणिक और कल्याणकारी माना गया है| इसका संबंध व्यक्ति और समाज दोनों के एकात्मक दृष्टिकोण से है जिससे सामाजिक सामंजस्य एवं न्याय का संचालन होता है यद्यपि पूर्व वैदिक युग में जाति का संबंध कर्म से था अर्थात व्यवसाय के आधार पर या कर्म के आधार पर उच्च और निम्न जातियों का निर्धारण होता था| छान्दोग्य उपनिषद के अनुसार पूर्व के कर्मानुसार ही वर्ण की प्राप्ति होती है अर्थात् उत्तम कर्म का निर्वहन करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य

बनेंगे जबकि अधम या निम्न कर्तव्यों का संवहन करने वाला व्यक्ति शुद्र होगा| वर्ण धर्म की नैतिक महत्ता को परिलक्षित करते हुए 'ईश्वास्योपनिषद' में कहा गया है कि, **"जो सभी प्राणियों को अपने में और अपने को सभी प्राणियों में देखता है वह अपनी इस एकत्व की अनुभूति के कारण किसी से घृणा नहीं करता है|"**[ii] औपनिषद कालखण्ड में सामाजिक चिंतन के आधार स्वरूप इसी एकत्व भाव को अभिव्यंजित किया गया| इस प्रकार एक ही समय में कर्म के आधार पर एक ही परिवार में चातुर्यवर्ण्य की कल्पना की जा सकती थी| इस प्रकार प्रारंभ की वर्षों में जाति रूपी सामाजिक संस्था का विरोध या समर्थन किसी धार्मिक या सामाजिक बंधन से नहीं था क्योंकि यह पूर्णतः व्यक्ति के प्रधान प्रवृत्ति आधारित सामाजिक परंपरा थी| इस संदर्भ में कर्म की प्रधानता को प्रख्यापित करते हुए लोक कवि तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में लिखा है, **"कर्म प्रधान विश्व करि राखा| जो जस करहिंसो तस फल चाखा||"**[iii] अर्थात कर्म ही प्रधान गुणों का निर्धारण कर्ता होता है तथा उसके कर्मों के गुणों के अनुरूप ही उसके भविष्य का निर्धारण होता है| तुलसीदास की यह उक्ति भारत की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था को परिलक्षित करती है| यद्यपि समय दर समय जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था का स्वरुप बदलता चला गया, जो पूर्व वैदिक युग में कर्म आधारित था उसका सवरूप महाकाव्यों,स्मृतियों, ब्राह्मणों, पुराणों व धर्मशास्त्रों के कालखंड में परिवर्तित होकर जन्म आधारित हो गया| जहाँ मनुस्मृति के बारह अध्यायों में वर्ण व्यवस्था का विषद वर्णन करते हुए चातुर्यवर्णों के कर्तव्यों के निर्वहन का सिद्धांत प्रस्तुत करते हुए कहा गया है, **"इस वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य प्रत्येक मनुष्य को समाज के लिए उपयोगी बनाना है और सामाजिक कल्याण के लिए वर्ण का धर्म सत्य बोलना, चोरी न करना, पवित्र रहना और इन्द्रियों का संयम**

करना है।"[iv] वहीं मनुष्यों की उत्पत्ति को विष्णु पुराण में गुणों के आधार पर प्रस्तुत किया गया और कहा गया कि परमपिता ब्रह्मा जब सृष्टि का सृजन कर रहे थें तो जिनमें सत्वगुण की प्रधानता थी वह मुख से उत्पन्न हुए और उन्हें ब्राह्मण नाम दिया गया। जिनमें रजस की प्रधानता थी वह छाती से उत्पन्न हुए उनका नाम क्षत्रिय पड़ा। जिनमें रजस और तमस दोनों की प्रधानता थी उनकी उत्पत्ति ब्रह्मा की जंघा से हुयी और उनका नाम वैश्य पड़ा। अंत में ब्रह्मा के चरणों से शुद्र की उत्पत्ति हुयी उनमें तमस की प्रधानता थी। गुणों और कर्मों की प्रधानता का दिग्दर्शन वेदव्यास द्वारा संकलित 'भागवत गीता' में भी परिलक्षित होता है जिसका सामाजिक कर्म सिद्धांत मूलतः मानव की समानता, स्वतंत्रता एवं भातृत्व-भाव पर आधारित है। इस महाकाव्य में भी मानव गुणों को जन्म का आधार बताते हुए भगवान विष्णु ने गीता सार में कहा है, **"चातुर्वर्ण्यम् मया सृष्टम् गुणकर्मविभागशः"**[v] अर्थात् प्राणियों के गुणों और कर्मों के आधार पर चरों वर्णों का सृजन हुआ है।

भारतीय दर्शन के परवर्ती विचार दर्शनों में इन गुण और कर्म आधारित जन्म और वर्ण सम्बन्धी पौराणिक आख्यापनाओं के अतिरिक्त मानवतावादी विचार दर्शन को आधार मानते हुए बौद्ध, जैन और चार्वाक दर्शन में सामाजिक न्याय के लिए किसी भी दैवीय या ईश्वरीय व्यवस्था के प्रतिमानों को अस्वीकार करते हुए कर्म को प्राख्यापित करने का कार्य किया है। बौद्ध दर्शन में सामाजिक न्याय को सहजता से स्वीकार किया गया तथा सभी वर्णों और जातियों के लोगों को नैतिकता और आचरण के आधार पर बौद्ध धर्म का अनुशरण करने की छूट प्रदान की थी। **"जिस किसी का भी आचरण शुद्ध होता था वह निम्न होकर भी इस धर्म का अनुयायी बन सकता था।"**[vi] दार्शनिक संस्कारों के अतिरिक्त मध्यकालीन भारतीय जनमानस के मध्य सामाजिक न्याय और जनचेतना के भावों का

परिलक्षण इस कालखंड के संत महात्माओं ने किया| इस कालखंड में इन्द्रियों पर नियंत्रण, इच्छाओं का दमन व रागद्वेष से ऊपर उठाकर लौकिक संबंधों पर आधारित सामाजिक न्याय की वकालत की गयी| यद्यपि मध्यकालीन भारत में जातिवाद, सामंतवाद, शोषण व बेगारी अपने चरम पर था| अशिक्षा, ऊंच-नीच, छुआछूत, सांप्रदायिकता इत्यादि कुरीतियाँ इस कालखण्ड के वातावरण में व्याप्त था लेकिन सामाजिक न्याय के हिमायती कबीर और गुरु नानक जैसे महान आत्माओं ने इन कुरीतियों को चुनौती प्रदान करते हुए सामाजिक न्याय का झंडा बुलंद किया| जिसकी स्पष्ट छाप राष्ट्रीय उन्नति और राष्ट्रवाद की समेकित विचारधारा में प्रवीण आधुनिक भारत के जनमानस में दिखाई देता है| जहाँ सामाजिक न्याय की अवधारणा को राष्ट्र भक्ति से जोड़कर जनभावना को उद्दीप्त कर संभाव और सद्भाव की भावना को जागृत करने का कार्य किया गया| इसी कड़ी में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भी मानवीय मूल्यों, सामाजिक संभावों और सद्भावों को चिन्हित कर सामाजिक न्याय के उच्च आदर्शों को प्रख्यापित करने का प्रयास किया|

बहुआयामी प्रतिभा के धनी डॉ. भीमराव अंबेडकर पिता रामजीराव सकपाल और माता भीमाबाई की चौदहवीं संतान थें| इनका जन्म वर्तमान मध्यप्रदेश के इंदौर जनपद के महूपुर छावनी में 14 अप्रैल 1891 को हुआ| यद्यपि इनके पिता रामजीराव सकपाल का पैतृक गाँव 'आम्बावडे' कोंकड़ क्षेत्र के रत्नागिरी जनपद में था| डॉ. अम्बेडकर का पैतृक संबंध उस भूमि से था जिसने बहुत से वीर सपूतों को अपनी गोद में पालित किया| भारतीय इतिहास में कोंकड़ क्षेत्र के सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि, **"यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें भारत वर्ष की अनेक विभूतियों व वीरों ने जन्म लिया| जिनमें प्रमुख हैं- तिलक, कर्वे, गोखले, परांजपे और सावरकर आदि|"**[vii] महाराष्ट्र

राज्य के महार जाति में जन्में अम्बेडकर का परिवार सैनिक पृष्ठभूमि से था| इनके दादा मालोजीराव सकपाल व पिता रामजीराव सकपाल सेवानिवृत सैनिक थें तथा इनकी माता का संबंध भी सैनिक परिवार से था| अम्बेडकर जी का बचपन सामाजिक और आर्थिक विपन्नता में गुजरा| डॉ. अम्बेडकर का जन्म महाराष्ट्र की अत्यंत ही त्रस्त एवं पीड़ित महार जाति में हुआ| जिसके प्रति उच्चवर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली जातियों के लोगों में आत्मीयता का लोप दिखाई पड़ता है तथा पूर्णतः अस्पृश्य या अछूत मानते हुए इन जातियों के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकारों को सीमित कर दिया गया था| यद्यपि डॉ. अम्बेडकर का जन्म जिस जातिवर्ग में हुआ वह महाराष्ट्र की अत्यंत ही उद्यमी, बहादुर व शूरवीर जाति मानी जाती है, जिसने न केवल कठिन परिश्रम कर कृषि कर्म से अन्न का उत्पादन किया अपितु यूरोपीय सेना की अग्रिम पंक्ति में कई युद्धों में मोर्चा भी संभाला| यही नहीं प्रथम विश्व युद्ध में महार बटालियन, मराठों की सेना में महार रेजिमेंट, बंबई प्रेसिडेंसी में महार रेजिमेंट तथा आजादी के पश्चात् भारतीय सेना में महार रेजिमेंट का गठन इनकी शूरवीरता का प्रमाण प्रस्तुत करता है| सूर्यनारायण त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर में आजादी के पश्चात् युद्धों में महार जाति की महत्ता को रेखांकित करते हुए लिखा है कि, **"भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय महार रेजिमेंट का योगदान किसी प्रकार कम नहीं रहा|"**[viii] इस प्रकार महार जाति योद्धाओं की अग्रिम पंक्ति में युद्ध करने वाली, लोगों के झगड़ों को सुलझाने में पुलिस की शारीरिक मदद करने वाली, सार्वजनिक घोषणाओं व सूचनाओं का प्रसार करने वाली व कृषि कार्य में दक्ष, कर्मठशील व जुझारू जाति थी फिर भी सामाजिक वर्ग संरचना में इन्हें घृणित, अस्पृश्य व अछूत मानते हुए इनके मूल सामाजिक अधिकार को निषेधित कर दिया गया था|

डॉ. भीमराव अम्बेडकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी एवं संघर्षशील व्यक्तित्व के परिचायक थें| उनका सम्पूर्ण जीवन निरंतर संघर्ष की पाठशाला रहा है| बाल्यकाल से लेकर जीवन के अनन्तिम पड़ाव तक डॉ. अम्बेडकर ने संघर्षों की नई-नई इबारतें लिखी| बाल्यकाल से ही डॉ. अम्बेडकर ने दैनिक जीवन में सामाजिक और आर्थिक संघर्षों को महसूस किया| पिता द्वारा अंग्रेज अफसर की पैरवी करने के पश्चात् बालक भीमराव का प्रवेश यद्यपि दापोली के एक मराठी स्कूल में हो गया परन्तु अस्पृश्यता के दंश का अनुभव बालक भीमराव ने यहीं से अनुभूत किया| जहाँ बालक भीमराव को अछूत व अस्पृश्य होने के कारण कक्षा में अंतिम प्रवेश, कक्षा के कोने में सबसे अलग बैठने तथा स्कूल के नल से स्वयं पानी पीने पर प्रतिबन्ध इत्यादि भेदभावों को अनुस्यूत करना पड़ा| भेदभाव का स्तर न केवल विद्यालय प्रबंधन, अध्यापक अपितु सहपाठियों में भी व्याप्त था| जिस कारण बालक भीमराव की अभ्यास पुस्तिका का न ही अध्यापक मूल्यांकित करते और न ही कभी पाठ वाचन करने को कहते तथा न ही कभी किसी प्रश्न का जवाब पूछते| यही नहीं एक बार की घटना जब बालक भीमराव ने अध्यापक के प्रश्नों का जवाब देने के लिए श्यामपट्ट की ओर गए तो सहपाठियों ने चिल्लाना शुरू कर दिया कि श्यामपट्ट के छूने मात्र से उसके पीछे रखे उनके दोपहर के भोजन में छूत लग जाएगी| बालक भीमराव का मन अध्यापक और सहपाठियों के इस प्रकार के व्यवहार से अत्यंत ही व्यथित होता था तथा बार-बार अछूत या अस्पृश्य होने और इसमें उनकी भूमिका पर प्रश्नचिन्ह खड़े करते हुए सवाल उनके मन में पैदा होते थें कि, **"अछूत का क्या अर्थ है? स्पर्श से अन्न कैसे सड़ जाता है? छूत किसको किससे? मैं दलित हूँ तो क्या हुआ? हाड़-माँस का ------ हूँ ना| फिर मेरे स्पर्श से अन्न सड़ कैसे जाता होगा? मेरे और किसी दूसरे व्यक्ति के स्पर्श में अंतर क्या**

है?"[ix] इस प्रकार के प्रश्नों को उद्वेलित करता हुआ बालक भीमराव का बचपन अत्यंत ही संघर्षों से भरा रहा है| अस्पृश्यता और जातिवादी संकीर्णताओं का दंश भीमराव अम्बेडकर को जीवन के हर पड़ाव पर अनुभूत करने को मिला| जैसे- एल्फिन्स्टन हाईस्कूल में भी उन्होंने अस्पृश्यता की जड़ता, घृणा और पक्षपात को महसूस किया| जहाँ पूरा विद्यालय तंत्र ही अस्पृश्यता की मानसिकता से बीमार था| इसक एक उदाहरण देखने को मिलता है, **"जब हाईस्कूल में वह संस्कृत पढ़ना चाहते थें, किन्तु महार जाति को देवभाषा (संस्कृत) पढ़ने के लिए कोई भी सवर्ण अध्यापक तैयार नहीं था| उन्हें विवश होकर फ़ारसी का अध्ययन करना पड़ा|"**[x] इस प्रकार के अभिशापों का अवलोकन करते हुए उन्होंने अपने दैनिक जीवन में यह अनुभूत किया कि अछूत या अस्पृश्य होना तात्कालिक परिस्थितयों में अभिशाप है क्योंकि प्रकृति द्वारा प्रदत्त प्राकृतिक संपदाओं पर इस जगत के सभी जीवों का बराबर अधिकार है क्योंकि प्रकृति ने किसी में कोई भेदभाव नहीं किया है| इसके बावजूद भी मानव द्वारा बनायीं गयी इस सामाजिक वर्ग भेद में निम्न जातियों या दलितों को मूलभूत जीवन अधिकार नहीं है| इस सामाजिक वर्गभेद में पशुओं या जानवरों को भी स्पर्श करने में कोई दोष नहीं है लेकिन दलितों के स्पर्श या छाया मात्र से ही अस्पृश्य हो जाने का खतरा बरक़रार होता है| अम्बेडकर जी ने जीवन के विविध चरणों में इस अस्पृश्यता के आघात को झेला था जिसका साक्ष्य उनके जीवन में घटित उक्त घटना से भी समझा जा सकता है, **"बालक भीमराव बाल कटाने नाई के पास गए, नाई ने उन्हें पहचान लिया और यह कहकर भगा दिया कि वह अछूत हैं| उनके बाल काटने से उनकी कैंची गन्दी हो जाएगी|"**[xi] इस प्रकार की घटनाओं की बानगी यह परिलक्षित करती है कि तात्कालिक समय की सामाजिक परिस्थितियाँ दलितों के लिए अत्यंत शोचनीय थीं तथा

इन अमानवीय और असामाजिक संकीर्णताओं का आस्वादन करता हुआ दलित समाज का सामाजिक ढांचा शून्यता या जड़ता की ओर उन्मुख हो चला था| इस प्रकार की असामाजिक जकड़ता के मध्य पालित डॉ. अम्बेडकर ने एक संवेदनशील समाजनिष्ठ व्यक्तित्व को गढ़ने का प्रयास किया तथा लोगों को भी अग्रसर होने के लिए प्रेरित भी किया| उनके इस जिजीविषा पूर्ण व्यक्तित्व के नियामक कारणों के रूप में उनके भोगे हुए यथार्थ को जिम्मेदार कारक मानते हुए डॉ. रामगोपाल सिंह ने यह लिखा है कि, **"बाल्यावस्था के कटु सामाजिक अनुभवों का प्रभाव डॉ. भीमराव अम्बेडकर के मन-मस्तिष्क पर जीवन पर्यन्त बना रहा| एक महार के घर जन्म लेकर डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने जो कुछ देखा, सहा और अनुभव किया उससे उनके चिंतन और कार्य की दिशा निश्चित हुयी|"**[xii] डॉ. अम्बेडकर ने मानवीय जीवन के अमानवीय व्यवहारों को न केवल अनुभूत किया बल्कि उस नग्न यथार्थ को भोगा था जिसमें व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य जाति, वर्ग रूपी सामाजिक विषमता के आधार पर विभेद किया जाता था तथा जहाँ दलितों के सामाजिक व दैहिक अधिकार अत्यंत ही कम थें| इस अनुभवजन्य यथार्थ को आधारित कर डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय की वकालत की|

सामाजिक न्याय एक बहुआयामी अवधारणा है जिसका तात्पर्य प्रकृति द्वारा प्रदत्त सभी भौतिक, सामाजिक और राजनीतिक संसाधनों का समस्त नागरिकों में न्यायसंगत वितरण| जिसमें सामाजिक अन्याय और भेदभाव को निस्तारित करने का भाव सन्निहित होता है| डॉ. अम्बेडकर ने इस भेदभाव रुपी कुरूपता को मिटाने के लिए 'सामाजिक न्याय' को एक आदर्श संसाधन के रूप में स्वीकार किया| उनका मानना था कि एक जाति विहीन आदर्श समाज की स्थापना स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के आदर्श पर स्थापित किया जा

सकता है| इन आदर्शों पर आधारित उच्च समाज की स्थापना के केंद्र में जो मूल तत्व निहित है वह है- 'न्याय'| अतः सामाजिक न्याय को डॉ. अम्बेडकर ने स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे का पर्याय माना| जहाँ स्वतंत्रता को सामाजिक न्याय का प्रथम घटक मानते हुए उसकी प्राप्ति हेतु कुछ प्रमुख सामाजिक मूल्यों यथा- सामाजिक समानता, आर्थिक समानता और सुलभ ज्ञान को निर्वार्ध रूप से जन-जन तक न्यायसंगत वितरण की वकालत करते हैं| इन सबमें भी सामाजिक समानता को सर्वोपरि माना है क्योंकि उनका अभिमत था कि यदि नागरिकों में सामाजिक समानता है तो वह स्वतंत्रता का समुचित उपयोग करने में सबल होंगे| यद्यपि डॉ. अम्बेडकर आजीवन सामाजिक असमानता व भेदभाव के दंश को झेला था तथा लगातार सामाजिक समानता के पक्ष में आवाज उठाया| यही कारण है कि जब मांटेग्यु चेम्सफोर्ड आयोग के सुधारात्मक कानून लाये गए तथा स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा जब स्वराज की मांग की जा रही थी उस समय भी डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के सामाजिक अधिकारों को सुरक्षित करने की बात करते हुए स्वराज से अधिक सामाजिक समानता पर बाल देते हुए कहा कि, **"स्वराज की मांग से पूर्व सामाजिक समानता सुनिश्चित की जाय| स्वराज उसी प्रकार एक महार का भी जन्मसिद्ध अधिकार है जैसा कि ब्राह्मण का|"**[xiii] इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक समानता को स्वतंत्रता के अन्य महत्वपूर्ण तत्वों की जननी माना क्योंकि सामाजिक समानता का ध्येय हासिल कर लेने के पश्चात् आर्थिक समानता के बिन्दुओं को उद्घाटित किया जा सकता है जिससे शिक्षा प्राप्ति के मार्ग को सुगम बनाया जा सकता है| इसकी महत्ता को ज्ञापित करते हुए उन्होंने अपने संबोधनों में कहा है कि, **"विशेषाधिकार उसके धारकों के पक्ष में सामाजिक क्रिया के संतुलन का झुकाव है नागरिकों के**

सामाजिक अधिकार अधिक समान हैं तो वे अपनी स्वतंत्रता का उपयोग करने में अधिक सक्षम होंगे|"[xiv]

डॉ. अम्बेडकर इस तथ्य में विश्वास रखते थें कि यदि मनुष्य के सामाजिक सरोकार सुरक्षित हैं, उसकी दैनिक कार्यविधि समान रूप से बिना किसी भेदभाव के संचालित होती है तथा संसाधनों का उचित व समान वितरण और आर्थिक सुरक्षा का भाव ज्ञापित किया गया हो, तो वह समाज आर्थिक सम्पन्नता को प्राप्त कर लेता है| जिस समाज में आर्थिक सुरक्षा की वकालत की जाती है वह समाज उच्च आदर्शोन्मुख होता है| बाबासाहेब अम्बेडकर ने आर्थिक सुरक्षा के पहलुओं को अपने जीवन काल में महसूस किया| उन्होंने देखा था कि किस प्रकार एक दलित को न ही धन संचय का अधिकार है और न ही अपनी भूमि पर कृषि कर्म करने का| दलित केवल दूसरों के यहाँ मजदूरी, बेगारी करने को विवश था क्योंकि उसके पास कृषि योग्य भूमि नहीं थी और न ही उसे स्वामित्व प्रदान किया गया था| इसी आर्थिक तंगी में उनके पिता ने भी पालन पोषण किया| यही कारण है कि डॉ. अम्बेडकर ने मनुष्य के स्वतंत्र व्यवहार के लिए आर्थिक सुरक्षा पर जोर देते हुए कहा है कि, **"कोई भी आदमी किसी भी व्यवसाय में प्रवेश करने हेतु स्वतंत्र हो सकता है| यदि वह रोजगार में सुरक्षा से वंचित हो जाता है तो वह स्वाधीनता के सार के साथ असहनीय मानसिक और शारीरिक दासता का शिकार बन जाता है|-----यह भाव दर्शाता है कि आर्थिक सुरक्षा के बिना स्वतंत्रता किसी लायक नहीं|"**[xv] डॉ. अम्बेडकर ने अपने जीवनकाल में सामाजिक समानता और आर्थिक सुरक्षा का अभाव झेला था| इन सबके बावजूद उन्होंने अपनी कर्मठता, विवेकशीलता और संघर्षशील व्यक्तित्व के कारण शिक्षा के उच्चतम पायदान को हासिल किया| उन्होंने फ़ारसी से कला स्नातक उत्तीर्ण किया तथा बड़ौदा राज्य के महाराजा द्वारा प्राप्त 11 पौंड मासिक की

फ़ेलोशिप पर न्यूयार्क और कोलंबिया विश्वविद्यालय में मुख्यतः अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, मानववंश विज्ञान के साथ ही साथ क़ानून की भी उच्चशिक्षा प्राप्त की| जीवन की विविध जटिलताओं और समस्याओं को झेलते हुए शिक्षा के उच्चतम पायदान को हासिल करने के पश्चात् डॉ. अम्बेडकर ने यह अनुभव किया कि दलितों व पिछड़ों के सामाजिक उद्धार में जिस प्रकार सामाजिक समानता और आर्थिक सुरक्षा आवश्यक है उसी प्रकार शिक्षा एक अनिवार्य तत्व है| उनका अभिमत था कि बिना ज्ञानवर्धन किए दलित समाज का उत्थान संभव नहीं है तथा यदि दलितों को सुलभ ज्ञान मुहैया करा दिया जाय तो वे अपने अधिकारों का संरक्षण व संवरण कर सकते हैं| यही कारण है कि उन्होंने शिक्षा को सामाजिक न्याय का अनिवार्य तत्व माना| भारत में व्याप्त सामाजिक असमानता और भेदभाव की कटु आलोचना करते हुए 31 जनवरी 1920 को प्रकाशित समाचार-पत्र 'मूकनायक' के संपादकीय लेख में दलितों की शिक्षा और आर्थिक प्रगति की अनिवार्यता और भेदभाव को अभिकेंद्रित करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने लिखा कि, **"भारत असमानता का आवास है और वर्तमान समाचार-पत्र कुछ विशिष्ट जातियों की रक्षा कर रहे हैं| जब तक गैर ब्राह्मण दलित जातियाँ ज्ञान और शक्ति संपन्न नहीं होंगी तब तक वे प्रगति नहीं कर सकती हैं|"**[xvi] इस प्रकार उन्होंने दलितों, पिछड़ों के उन्नयन हेतु निर्वार्ध सुलभ ज्ञान के संचार की महत्ता को उद्घाटित किया है|

डॉ.अम्बेडकर के सामाजिक न्याय में मानवीय जीवन की गतिशीलता और आदर्श समाज के निर्माण की छवि निहित है| सामाजिक न्याय के आरोहण हेतु डॉ. अम्बेडकर ने 'समानता' को दूसरा अनिवार्य घटक स्वीकार किया| उन्होंने अपने बाल्यकाल से लेकर जीवन के प्रत्येक पायदान पर असमानता के दंश को सहा था

जिस कारण उन्होंने सामाजिक न्याय के मूल्यों को निर्धारित करते हुए समानता को अनिवार्य घटक माना तथा उसके कार्यान्वयन हेतु निरंतर प्रयास किया| डॉ. अम्बेडकर जी ने समानता के सन्दर्भ में उद्घाटित किया कि सभी मनुष्य एक समान हैं| सभी के अधिकार और कर्तव्य एक समान होने चाहिए तथा सभी की स्वतंत्रता सुनिश्चित होनी चाहिए| जाति, लिंग, धर्म व सम्प्रदाय के आधार पर विभाजित व भेदभाव से परिपूर्ण समाज से इतर उच्च आदर्शोन्मुख समाज की प्राप्ति हेतु समानता रूपी घटक सामाजिक न्याय का आधार है| यही कारण है कि डॉ. अम्बेडकर वर्णव्यवस्था और जातिवाद रूपी विभाजनकारी व्यवस्था में पालित समाज को न्यायोचित नहीं मानते थें| वह सदैव समानता पर आधारित एक नवीन समाज के निर्माण के पक्षधर थें| उनका कहना था कि, **"समानता एक नैतिक मूल्य है, जिससे संपत्ति के अधिकार सहितअन्य अधिकारों हेतु प्रभोग का निर्माण होता है| वे लोग जो समानता को सम्मानपूर्ण नहीं मानते वे संपत्ति, अनुबंध और लेनदेन के अपने अधिकारों सहित उनके अधिकारों के प्रति सम्मान का दावा नहीं कर सकते| एक समान विचारों को प्रोत्साहित करना सिविल सोसाईटी की जिम्मेदारी है क्योंकि वह राज्य से ही संबंधित होता है|"**[xvii] इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर समानता जैसे मूल्यों के निर्वहन हेतु सामाजिक संस्थाओं को अनिवार्य तत्व स्वीकार करते हैं| उनका मानना था कि समानता मात्र एक विचार नहीं है कि जिसका अनुभव केवल विचारों में किया जाय| इसके विपरीत समानता मानवीय जीवन का वह व्यावहारिक कर्तव्य है जिसे केन्द्रित कर बुद्धिवान प्राणी अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दायित्वों का निर्वहन करता है| यही कारण है कि उन्होंने सार्वजनिक महत्त्व के विषयों पर समाज से समता के मूल्यों की स्थापना का जोर देते हुए कहा है, **"यदि व्यैक्तिक प्रयत्नों में हम**

व्यक्तियों को असमान समझें, तो कम से कम सामाजिक सुविधाओं के क्षेत्र में उन्हें समान समझना चाहिए| प्रत्येक व्यक्ति को आगे बढ़ने का अवसर दिया जाना चाहिए| जहाँ तक संभव है मनुष्य को एक दूसरे के साथ समता का व्यवहार करना चाहिए|"[xviii] इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर ने कर्तव्य एवं अधिकार के संतुलन पर आधारित समतामूलक समाज की स्थापना पर जोर दिया| जिससे कि सामाजिक न्याय आधारित आदर्शोन्मुख समाज की स्थापना की जा सके|

डॉ. अम्बेडकर आदर्श समाज की स्थापना हेतु सामाजिक न्याय के तृतीय घटक के रूप में भातृत्व या भाईचारे को अनिवार्य माना है| यहाँ भातृत्व से तात्पर्य एक ऐसी भावनात्मक व्यवस्था से है जिसमें सभी मनुष्य आपसी प्रेम और भाईचारे के साथ सौहार्द्य पूर्वक एक साथ रहते हैं| आदर्श समाज हेतु भाईचारे के दो उच्च आदर्श सिद्धांतों को व्याख्यायित करते हुए डॉ. अम्बेडकर कहते हैं, **"इन आदर्शों में पहला यह है कि व्यक्ति अपने आप में अंत है और समाज का उद्देश्य व्यक्ति का विकास और उसके व्यक्तित्व का विकास है| समाज व्यक्ति से ऊपर नहीं है और अगर व्यक्ति को खुद को समाज के अधीन रखना पड़ता है तो ऐसा इसलिए है क्योंकि इस तरह की अधीनता उसके भलाई हेतु है और आवश्यक सीमा तक ही है| दूसरी जरुरी बात यह है कि समाज के सदस्यों के बीच सम्मिलित जीवन की शर्तों को स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे पर आधारित विचारों के आधार पर माना जाना चाहिए|"**[xix] यहाँ डॉ. अम्बेडकर ने भातृत्व या भाईचारे को सामाजिक एवं आध्यात्मिक एकरूपता या भावनात्मक एकता से जोड़ते हुए सहयोग आधारित समरसता पूर्ण समाज की स्थापना पर बल दिया| इनका भातृत्व भाव व्यक्तिवाद एवं समाजवाद, राष्ट्रवाद एवं मानववाद, भौतिकतावाद एवं

आध्यात्मिकता के समन्वय पर आधारित है| इन्होंने भातृत्व या भाईचारे के लिए सामाजिक गतिशीलता को प्रभावी माना है| डॉ. अम्बेडकर भातृत्व की गतिशीलता के मूल्यों को परिभाषित करते हुए कहते हैं, **"भातृत्व का सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि लोगों में एक ऐसा सामाजिक प्रवाह बना रहे कि विचार एवं घटनाओं का विनिमय होता रहे| सामाजिक गतिशीलता रखने के लिए विचार एवं संस्थाओं में मनुष्यों की आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते रहना चाहिए|"**[xx] इस प्रकार अम्बेडकर जी ने सामाजिक गतिशीलता को भातृत्व प्रेम के संचरण हेतु प्रभावी माना जो सामाजिक न्याय के अन्य प्रभावी तत्व समता और स्वतंत्रता के लिए प्रभावी होगा|

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय चिंतन परंपरा में न्याय दर्शन की संकल्पना अत्यंत ही प्राच्य है लेकिन उसका सामाजिक चरित्र आधुनिक समाज के मानवीय कल्याण में आज भी अद्यतन है| इसका सामरिक विवरण वेदों, पुराणों, आख्यानों, महाकाव्यों, उपनिषदों इत्यादि में परिलक्षित होता है| सामाजिक न्याय की संकल्पना साथ मिलकर रहने, साथ चलने, साथ बोलने व साथ-साथ विचार करने के भाव में अभिव्यंजित होता है| इन्हीं उच्च आदर्शों को अभिव्यंजित करते हुए डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय की संकल्पना को प्रस्तुत किया जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व या भातृत्व के उच्च आदर्शों को परिलक्षित करता है| अम्बेडकर जी ने अपने जीवन के कटु यथार्थ को न केवल आत्मसात किया अपितु शोषितों, पीड़ितों व दलितों को उस पीड़ा से निकालने हेतु निरंतर प्रयास किया| उन्होंने सामाजिक न्याय के मूल्यों को परिभाषित करने व सामाजिक न्याय आन्दोलन को दिशा देने के लिए विभिन्न पत्रिकाओं का संपादन किया| जैसे- प्रथम पाक्षिक पत्रिका 'मूकनायक' में दलित व शोषित वर्ग के दुःखों की अभिव्यक्ति, 'बहिष्कृत भारत' पत्रिका में

दलितों के कल्याण का प्रश्न, 'इक्वेलिटी' पत्रिका में दलितों की समानता का प्रश्न उठाया| उनका सामाजिक चिंतन मानवीय कल्याण को आधारित किए हुए था जिसमें समाज की उपेक्षित, असुरक्षित एवं हाशिये पर स्थित व्यक्तियों, महिलाओं, समुदायों व संप्रदायों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने तथा उनके सामाजिक और मानवीय मूल्यों को सुरक्षा की गारंटी या निश्चिंतता प्रदान करने का कार्य किया| इन्होंने सामाजिक न्याय की जिस अवधारणा को अभिव्यंजित करने का प्रयास किया वह महात्मा गांधी के सर्वोदय से भिन्न था क्योंकि महात्मा गाँधी ने मानव उत्थान के लिए सत्य, अहिंसा और ईश्वर-प्रेम को आवश्यक माना जबकि अम्बेडकर जी ने स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व को सामाजिक उत्थान का कारक माना| डॉ. अम्बेडकर के समान डॉ. हेडगेवार ने भी सामाजिक न्याय के मूल्यों को स्थापित करने तथा सामाजिक समरसता को स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापन की| जिसमें सभी जाति, वर्ग के लोग बिना किसी भेदभाव के एक साथ सामाजिक समरसता के साथ राष्ट्र निर्माण के उद्यम में लगे हैं| स्वयंसेवकों के मध्य सामाजिक समरसता के मूल्यों का परिक्षण स्वयं डॉ. अम्बेडकर ने किया, जब 1939 में वे पूना स्वयं शिक्षा वर्ग में सम्मिलित हुए और डॉ. हेडगेवार से पूछा कि यहाँ कितने अस्पृश्य हैं? तो इस कथन पर हेडगेवार जी ने स्वयं पूछने के लिए बोला लेकिन दलितों की संख्या 100 से अधिक होने पर भी कोई अस्पृश्य बाहर नहीं आया| इस पर हेडगेवार ने कहा, **"यहाँ हम अस्पृश्य हैं ऐसा कभी किसी को लगने नहीं दिया जाता है| अब यदि चाहें तो जो उप जातियां हैं उनका नाम लेकर पूछ लीजिए|"**[xxi] डॉ. अम्बेडकर ने डॉ. हेडगेवार एवं आर.एस.एस. के सामाजिक समरसता के मुहिम की भी सराहना की| डॉ. आंबेडकर की ही भांति पं. दीन दयाल उपाध्याय जी ने भी सामाजिक न्याय की

वकालत की| उन्होंने मानवीय वैविध्याताओं को संकेंद्रित कर 'एकात्म मानववाद सिद्धांत' का प्रवर्तन किया है| जिसमें मानवीय, सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय और विश्व बंधुत्व की संकल्पना सन्निहित है| उन्होंने आर्थिक व्यवहारों को आध्यात्मिक मूल्यों के साथ समावेशित कर एक खुशहाल समाज की नींव डालने का प्रयास किया। उन्होंने अपने विचार शोध में एकात्म मानववाद के सन्दर्भ में कहा है, **"मानव भगवान की उत्कृष्ट देन है, जो अपनी पहचान खो रहा है। हमें उसको सही स्थिति में फिर से स्थापित करना चाहिए, उसे उसकी महानता की पहचान, उसकी क्षमताओं को जगाने और ऊँचाइयों को प्राप्त करने के लिए, उसके दिव्य अव्यक्त व्यक्तित्व को फिर से जगाने के लिए उसे प्रोत्साहित करना चाहिए।"**[xxii] अर्थात् डॉ. आंबेडकर की ही तरह पं. दीनदयाल जी ने अपने एकात्म मानववाद में व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र और फिर मानवता को जोड़ने की वकालत की है। डॉ. अम्बेडकर के विचारों के साम्य इन्होंने भी लोकमत को बढ़ावा देते हुए सामाजिक न्याय के आदर्शों की वकालत की है| उनका कहना था कि समाज का यह कर्तव्य होना चाहिए कि लोगों को जाति व धर्म के प्रति जागरूक करें, जिससे लोगों में एक दूसरे के प्रति परस्पर सद्भाव व सम्मान रहे तथा आपसी मनमुटाव न हो। जिससे वैमनस्य के विपरीत सामाजिक सद्भाव के साथ ही साथ धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मूल्यों का सामंजस्य व्याप्त हो| इस प्रकार प्राचीन भारत से लेकर आधुनिक चिंतकों ने समय के सापेक्ष सामाजिक न्याय के आदर्श स्वरुप को प्रस्तुत किया है| जिसमें डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत भारतीय सामाजिक न्याय दर्शन समानता, स्वतंत्रता व बंधुता के प्राच्य और आधुनिक मूल्यों के समन्वय पर आधारित है जिसके केंद्र में जाति, वर्ग व भेदभाव विहीन समाज की संकल्पना निहित है| जिसका सोद्देश्य मानव कल्याण है|

[i] ऋग्वेद, 10/192/2

[ii] राजेन्द्र रघुवंशी, हिन्दू ची जाति प्रथा वतीमोंडयाचा मार्ग, डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर, पुणे-1989, पृष्ठ संख्या- 14

[iii] तुलसीदास, रामचरितमानस (सुंदरकांड), 58/6

[iv] सम्पूर्ण वांग्यमय, खंड-7, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 543-544

[v] श्रीमद् भागवतगीता, 4/13

[vi] जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादेमी, 1992, पृष्ठ संख्या- 871

[vii] डॉ. विष्णुगुप्त नागर, डॉ. अम्बेडकर के आर्थिक विचार और नीतियाँ, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1955, पृष्ठ संख्या- 03

[viii] सूर्यनारायण त्रिपाठी, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर, 1971, पृष्ठ संख्या- 5

[ix] संजीवनी मेहरदां, अम्बेडकर और सामाजिक न्याय, रावत पब्लिकेशन जयपुर, 1983, पृष्ठ संख्या- 25

[x] संजीवनी मेहरदां, अम्बेडकर और सामाजिक न्याय, रावत पब्लिकेशन जयपुर, 1983, पृष्ठ संख्या- 26

[xi] डॉ. रामगोपाल सिंह, डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचार, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादेमी भोपाल, 1991, पृष्ठ संख्या- 03

[xii] डॉ. रामगोपाल सिंह, डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचार, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादेमी भोपाल, 1991, पृष्ठ संख्या- 07

[xiii] डॉ. जे. पी. प्रशांत, बाबा साहेब अम्बेडकर : जीवन संघर्ष, कल्चर पब्लिशर्स, लखनऊ, 1985, पृष्ठ संख्या- 11

[xiv] डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर, राइटिंग एंड स्पीचेस, खंड 3, महाराष्ट्र सरकार, मुंबई, 1987, पृष्ठ संख्या- 39

[xv] डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर, राइटिंग एंड स्पीचेस, खंड 3, महाराष्ट्र सरकार, मुंबई, 1987, पृष्ठ संख्या- 39

[xvi] एस. एल. सागर, डॉ. अम्बेडकर का संक्षिप्त जीवन परिचय, 1987, पृष्ठ संख्या-10

[xvii] रोड्रिग्यूज वेलेरियन, अम्बेडकर ऑन प्रेफ्रेंसिअल, ट्रीटमेंट, संगोष्ठी खंड- 549, मई 2005

[xviii] डॉ. डी. आर. जाटव, डॉ. अम्बेडकर का समाज दर्शन, समता साहित्य सदन, जयपुर, तृतीय संस्करण (1990), पृष्ठ संख्या- 69-70

[xix] डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर, राइटिंग एंड स्पीचेस, खंड 3, महाराष्ट्र सरकार, मुंबई, 1987, पृष्ठ संख्या- 95

[xx] बी. आर. अम्बेडकर, एनिहिलेशन ऑफ़ कास्ट, 1936, पृष्ठ संख्या- 38

[xxi] दत्तोपंथ ठेंगड़ी, एकात्मता के पुजारी : डॉ.बाबा साहेब अम्बेडकर, लोकहित प्रकाशन लखनऊ, 2003, पृष्ठ संख्या- 05

[xxii] एकात्म मानववाद, नवचेतन प्रेस, दिल्ली, 1965, पृष्ठ संख्या-78